प्रभावशाली उपचार हेतु सही निदान आवश्यक

शरीर को पोषण करने वाले तत्त्वों का सम्यक् उपयोग आवश्यक

स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ईमानदारी पूर्वक पालन करना चाहिए। दो श्वासों के बीच का समय ही जीवन है। प्रत्येक व्यक्ति के श्वासों की संख्या निश्चित होती है। जो व्यक्ति आधा श्वास लेता है, वह आधा जीवन ही जीता है। अतः उन्हें चिन्तन करना चाहिए कि भोजन, पानी, हवा, धूप, व्यायाम और आराम कब करें? क्यों करें? कहाँ करें? कितना करें? कैसे करें? और कब, कहाँ और कैसे, क्यों न करें?

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण सम्भव है?

दुनियां में कोई दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकतें? क्या उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएँ, कर्त्तव्य, आवश्यकताएँ, समस्याएँ आदि एक जैसी ही होती है? नहीं! अतः बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के कारण एक जैसी-दवा अथवा उपचार करना, किसी एक रोग के नाम से रोगी का परिचय करना, सहयोगी रोगों की उपेक्षा करना कहाँ तक उचित है ?जो चिन्तनशील व्यक्तियों के सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है।

जितनी और जैसी रोग की स्थिति, उसके अनुरूप ही समाधान अपेक्षित होता है। जिसकी जितनी बुद्धि, विवेक, पात्रता, समझ और क्षमता होती है, उसको उसी के अनुरूप समाधान अथवा परामर्श दिया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास-प्रवास, आयु, व्यवसाय, कर्त्तव्य, जिम्मेदारियाँ, रूचि, स्वभाव, सहनशक्ति, सोच, शारीरिक और मानसिक क्षमता, पारिवारिक एवं व्याससायिक परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज, धार्मिक संस्कार और मान्यताएँ, मौसम की स्थिति और बदलाव, सहयोगी एवं द्वेषी लोगों का योग आदि दैनिक जीवन में ऐसे अनेकों कारण होते हैं जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, व्यक्ति में तनाव अथवा प्रसन्नता का कारण बनते हैं।

क्या हमारी भावनाओं, आकांक्षाओं, संकल्पों, विकल्पों, आवेगों, संवेदनाओं, इन्द्रियों के विषयों की ग्रहण शक्ति की विभिन्नता का स्वास्थ्य से संबंध होता है? क्या हमारा मनोबल, सहनशक्ति, उत्साह, सकारात्मक सोच, खुशी के प्रसंग आदि स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं? विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण किए गए एक जैसे विषय जैसेः- देखना, सुनना, बोलना, स्वाद, गन्ध, स्पर्श सभी व्यक्तियों पर एक-सा प्रभाव क्यों नहीं डालते? उनके प्रति रुचि अथवा अरुचि क्या हमारे स्वास्थ्य की अभिव्यक्ति तो नहीं करती? कहने का आशय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति पर उपर्युक्त बातों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग होता है। जो व्यक्ति लम्बे समय से रोगी होते हैं, उनकी प्राथमिकताएँ होती हैं- रोग का फैलाव रोकना तथा आंशिक स्वस्थता अथवा राहत प्राप्त करना। जो व्यक्ति मरणासन पर हैं, असाध्य भयंकर अथवा संक्रामक रोगों से पीड़ित हैं अथवा किसी भी प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त हैं, रोगों की भीषणता में आंशिक सुधार से ही, वे खुशी का अनुभव कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के अलग-अलग स्तर पर जीता है और उनके स्वास्थ्य के अपने-अपने मापदण्ड होते हैं। अलग-अलग आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ एवं सोच होता हैं। अतः स्वास्थ्य हेतु सभी के लिए एक-जैसा मापदण्ड, दवा का परामर्श, निर्देश और आचरण न तो उचित ही होता है और न सम्भव।

परन्तु आज स्वास्थ्य का परामर्श देते समय अथवा रोग की अवस्था में निदान करते समय प्रायः अधिकांश चिकित्सक अथवा स्वास्थ्य विशेषज्ञ व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपरोक्त प्रभावों का समग्रता से विश्लेषण नहीं करते। रोगी द्वारा निदान की सत्यता पर स्पष्टीकरण मांगने पर संतोषप्रद तर्क संगत प्रत्युत्तर नहीं देते। अतः चन्द अपवादों को छोड़ प्रायः उपचार और निदान रोगी की असजगता एवं अंधश्रद्धा के कारण अंधेरे में ही होता है।

सत्य की पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। वह तो व्यक्ति के स्वयं की अनुभूति का विषय होता है। जो भी देखा जाता है, यंत्रों अथवा परीक्षणों से पता लगाया जाता है, वह सत्यांश ही होता है। ऐसा अधूरा निदान और परामर्श कैसे शत-प्रतिशत सत्य, वैज्ञानिक और पूर्ण हो सकता है, अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों से सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति के स्वयं की सजगता, विवेक, बुद्धि स्वावलम्बन जीवन पद्धति तथा स्वयं की स्वयं द्वारा नियमित समीक्षा पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति के लिए अनिवार्य होती है। पराधीन अथवा दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति कभी भी स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वास्थ्य हेतु चिकित्सा के विभिन्न दृष्टिकोण-

रोग की अवस्था में आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार शरीर में वात, पित्त और कफ का असन्तुलन होने लगता है। आधुनिक चिकित्सक को मल, मूत्र, रक्त आदि के परीक्षणों में रोग के लक्षण और शरीर में रोग के कीटाणुओं तथा वायरस अथवा शरीर के तंत्रों में अवरोध दृष्टिगत होने लगते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक ऐसी स्थिति से शरीर के निर्माण में सहयोगी पंच महाभूत तत्त्वों- पृथ्वी, पानी, हवा, अग्नि और आकाश का असन्तुलन अनुभव करते हैं। चीनी एक्युपंक्चर एवं एक्युप्रेशर के विशेषज्ञों के अनुसार शरीर में यिन-यांग का असंतुलन हो जाता है। एक्युप्रेशर के प्रतिवेदन बिन्दुओं की मान्यता वाले थेरेपिष्टों को व्यक्ति की हथेली और पगथली में विजातीय तत्त्वों का जमाव प्रतीत होने लगता है। सुजोक बियोल मेरेडियन सिद्धान्तानुसार रोगी के शरीर में पंच ऊर्जाओं (वायु, गर्मी, ठण्डक, नमी और शुष्कता) का आवश्यक सन्तुलन बिगड़ने लगता है। चुम्बकीय चिकित्सक शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का असन्तुलन अनुभव करते हैं। ज्योतिष शास्त्री ऐसी परिस्थिति का कारण प्रतिकूल ग्रहों का प्रभाव बतलाते हैं। आध्यात्मिक योगी ऐसी अवस्था का कारण पूर्वार्जित अशुभ असाता वेदनीय कर्मों का उदय मानते हैं। होम्योपेथ और बायोकेमिस्ट की मान्यतानुसार शरीर में आवश्यक रासायनिक तत्त्वों का अनुपात बिगड़ने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। आहार विशेषज्ञ शरीर में पौष्टिक तत्त्वों का अभाव बतलाते हैं। शरीर में अम्ल-क्षार, ताप-ठण्डक का असन्तुलन बढ़ने लगता है। कहने का आशय यही है कि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार शरीर में इन विकारों की उपस्थिति को रोग अथवा अस्वस्थता का कारण मानते हैं। जो जैसा कारण बतलाता है, उसी के अनुरूप उपचार और परहेज रखने का परामर्श देते हैं। सभी को आंशिक सफलताएँ भी प्राप्त हो रही है तथा सफलताओं एवं अच्छे परिणामों के लम्बे-लम्बे दावे अपनी-अपनी चिकित्सा पद्धतियों के सुनने को मिल रहे हैं। विज्ञान के इस युग में किसी पद्धति को बिना सोचे-समझे अवैज्ञानिक मानना, न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना अवश्य है कि अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ रोग के मूल कारणों को समझने एवं दूर करने में अपने-आपको असमर्थ पा रही है। क्योंकि उनके चिन्तन में समग्रता का अभाव होता है। जिसका जितना ज्यादा विज्ञापन, प्रचार-प्रसार होता है, उस पद्धति का बिना सोचे समझे रोग की अवस्था में रोगी और उसके परिजनों की असजगता, अधीरता, अज्ञानवश उपचार हेतु प्रायः अन्धा:नुकरण हो रहा है। परिणाम स्पष्ट है कि डॉक्टरों और अस्पतालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है, जो स्वास्थ्य के प्रति हमारी अदूरदर्शिता, गलत चिन्तन, अप्राकृतिक जीवनशैली, अज्ञान, अविवेक एवं गलत सोच का सूचक है।

आज उपचार के नाम पर रोग के कारणों को दूर करने के बजाय अपने-अपने सिद्धान्तों के आधार पर रोग के लक्षण मिटाने का प्रयास हो रहा है। उपचार में समग्र दृष्टिकोण का अभाव होने से तथा रोग का मूल कारण पता लगाये बिना उपचार किया जा रहा है अर्थात् रोग से राहत ही उपचार का लक्ष्य बनता जा रहा है। उपचार एवं निदान करते समय मन के भावों, वाणी की अभिव्यक्ति, मानसिक कारणों तथा आत्मा की प्रायः पूर्णतया उपेक्षा हो रही है। अतः अच्छा स्वास्थ्य रखने वालों को स्वास्थ्य के मूलभूत सनातन प्राकृतिक साधारण नियमों को ईमानदारी पूर्वक सजगता एवं स्वविवेक से पालन करना चाहिये। जितना-जितना हमारा प्रकृति के साथ तालमेल होगा, उतना-उतना हम स्वस्थता के समीप होते जाएंगे। आकस्मिक दुर्घटनाओं को छोड़ अन्य परिस्थितियों में रोग का सही कारण जानने तथा उपचार की प्रासंगिकता समझने का भी प्रयास करना चाहिये, ताकि रोग की पुनरावृति और उपचार के दुष्प्रभावों से स्वयं को बचाया जा सके।

क्या शरीर में अकेला रोग हो सकता है ?

हमारे शरीर में प्रायः सैकड़ों रोग होते हैं। जिनकी उपस्थिति का हमें आभास तक नहीं होता है। हम रोग को तब तक रोग नहीं मानते, जब तक उनके लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो जाते या हमें परेशान करने नहीं लग जाते अथवा रोग हमारी सहनशक्ति से परे नहीं होने लगता है।

रोग के जो लक्षण बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, अथवा पेथालोजिकल टेस्टों एवं यंत्रों की पकड़ में आते हैं, वे लक्षण तो सामान्य ही होते हैं, जिनके आधार पर प्रायः रोगों का नाम:करण किया जाता है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के अधिकांश चिकित्सक भी प्रायः अपने सिद्धान्तों के अनुरूप निदान करने के स्थान पर उसी निदान को शत-प्रतिशत सही मान अपने-अपने ढंग से उन रोगों का उपचार करते हैं। पुराने अनुभवी वैद्य रोगी की नाड़ी देखकर रोग का सही निदान करने में सक्षम थे। परन्तु आज आयुर्वेद में भी निदान का वह आधार गौण होता जा रहा है। इसी कारण उसका प्रभाव भी दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। ठीक उसी प्रकार एक्युप्रेशर की सुजोक अथवा रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार हथेली और पगथली के जिन स्थानों पर दबाव देने से दर्द होता है, वे सारे स्थान शरीर में रोग के पारिवारिक सदस्य होते हैं, जितना अधिक दर्द उतना रोग निवारण हेतु प्रभावशाली

प्रतिवेदन बिन्दू होता है। परन्तु आज अधिकांश एक्यूप्रेशर चिकित्सक भी अपने सहज, सरल, सही निदान के तरीकों से दूर हट, आधुनिक निदान के आधार पर प्रदर्शित रोग का ही उपचार करते हैं। परिणाम स्वरूप उपचार की प्रभावशालीता न केवल कम हो जाती है, अपितु उपचार आंशिक होने से लम्बा भी हो जाता है।

क्या समान लक्षणों वाले दो रोगी एक जैसे हो सकते हैं?

दुनियां में जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते, तब दो रोगियों और उनका निदान एक जैसा कैसे हो सकता है ?वास्तव में आज लक्षणों के आधार पर जिन रोगों का नाम:करण किया जाता है, वे अनेक रोगों के समूह के नेता की भांति होते हैं। जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का सहयोग प्राप्त होता है। जनतंत्र में नेता को हटाने का सरलतम उपाय होता है कि उसके सहयोगियों को उनसे अलग करना। सहयोगियों को अलग किये बिना नेता को हटाना सरल नहीं होता। ठीक उसी प्रकार निदान करते समय, यदि अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा करें तो, निदान और उस पर आधारित उपचार आंशिक अथवा अधूरा ही होता है।

निदान में शारीरिक संतुलन की उपेक्षा अनुचित-

संतुलन स्वास्थ्य का कवच होता है तो असंतुलन रोगों का प्रवेश द्वार। जैसे पगथली ठण्डा होना, उठते-बैठते, चलते-फिरते पीड़ा की अनुभूति होना। एक पैर बड़ा अथवा दूसरे पैर का छोटा हो जाना। गर्दन और नाभि केन्द्रों का अपने स्थान से हट जाना। रीढ़ के मणको के आसपास अवरोध आ जाने से नाड़ी संस्थान संबंधी रोगों का प्रकट होना। जब तक इन असन्तुलनों को पुन: संतुलित नहीं किया जाता अथवा निदान करते समय उपेक्षा की तब तक कोई भी चिकित्सा पद्धति पूर्ण प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकती।

हमारा शरीर दाहिने एवं बायें बाह्य दृष्टि से एक जैसा लगता है। परन्तु उठने-बैठने-खड़े रहने, सोने अथवा चलते-फिरते समय प्राय: हम अपने बायें और दाहिने भाग पर बराबर वजन नहीं देते। जैसे खड़े रहते समय किसी एक तरफ थोड़ा झुक जाते हैं। बैठते समय सीधे नहीं बैठते। सोते समय हमारे पैर सीधे और बराबर नहीं रहते। स्वत: किसी एक पैर को दूसरे पैर की सहायता और सहयोग लेना पड़ता है। फलत: पैर के ऊपर दूसरा पैर चला जाता है। ऐसा क्यों होता है? हम किसी भी एक आसन में लम्बे समय तक स्थिरता पूर्वक क्यों नहीं बैठ सकते? इसका मतलब हमारा शरीर असंतुलित होता है। हमारे पूर्ण नियंत्रण में नहीं होता है। हम सीधे क्यों नहीं सो सकते? बार-बार करवटें क्यों बदलनी पड़ती हैं? निद्रा में पैर के ऊपर पैर क्यों चला जाता है?

निद्रा के समय शरीर निश्चित अवस्था में सतत लम्बे समय तक रहता है। अत: सोने का सही ढंग शरीर के संतुलन के लिए आवश्यक होता है। यही रोग की प्रारम्भिक स्थिति होती है।

जिस प्रकार खेती में बीज बोने से पूर्व खेत की सफाई एवं उस पर हल जोतना तथा खाद देना आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार उपचार से पूर्व कुछ सरल शारीरिक संतुलन से उपचार प्रभावशाली और स्थायी हो जाता है। स्वस्थ अवस्था में भी नियमित निरीक्षण कर संतुलन बनाये रखने से रोग होने की संभावना कम हो जाती है।

निदान में नाभि की भूमिका-

नाभि उठते-बैठते, दौड़ते-चलते, सोते अथवा किसी भी स्थिति में शरीर के अंगों-उपांगों को अपने स्थान पर स्थिर रखती है। हमारी अधिकांश शारीरिक एवं मानसिक तथा आध्यात्मिक क्रियाओं के संचालन में इसकी प्रभावशाली भूमिका होती है। जैसे कमल पानी में रहता हुआ भी उससे अपने आपको अलग रखता है। ठीक उसी प्रकार नाभि जीवन की अधिकांश शारीरिक, मानसिक, आत्मिक गतिविधियों का संचालक होते हुए भी बाह्य रूप से अपना कोई संबंध नहीं दर्शाती। जिस प्रकार वृत का केन्द्र होते हुए भी चित्र में वह नहीं दिखता, ठीक उसी प्रकार मन व आत्मा की भांति नाभि भी एक्सरे अथवा सोनोग्राफी की पकड़ में नहीं आती।। अत: आज का ऐलोपैथिक विज्ञान इसके अस्तित्व को स्वीकार करने में परेशानी अनुभव कर रहा है।

यदि नाभि अपने स्थान से अन्दर की तरफ हो जाए, उस व्यक्ति का वजन दिन-प्रतिदिन घटता चला जाता है और यदि किसी कारण नाभि अपने स्थान से बाहर की तरफ हो जाती है तो शरीर का वजन न चाहते हुए भी अनावश्यक बढ़ने लगता है। किसी कारण नाभि यदि अपने स्थान से ऊपर की तरफ चढ़ जाती है तो खट्टी डकारें, अपच आदि की शिकायतें रहने लगती है। कब्जी हो सकती है। परन्तु यदि नाभि अपने स्थान से नीचे की तरफ चली जाती है तो दस्तों की शिकायत हो जाती है। इस प्रकार नाभि कभी दांयें-बांयें, तिरछी दिशाओं में भी हट जाती है, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग होने लगते हैं। सारे परीक्षण एवं पेथोलोजिकल टेस्ट करने के पश्चात् भी रोग पकड़ में नहीं आता। ऐसे में नाभि केन्द्र को अपने केन्द्र में लाने से तुरन्त राहत मिलने लग जाती है। अत: नाभि की उपेक्षा करने वाला निदान सही एवं वैज्ञानिक होने का अहं नहीं कर सकता।

क्या भाव निदान को प्रभावित करते है ?

भावों और मानसिक स्थिति के अनुसार ही अन्त:श्रावी ग्रन्थियाँ अपने हारमोन्स पैदा करती हैं, इसी कारण एक ही व्यक्ति के अलग-अलग समय पर किये जाने वाले मल, मूत्र, ई.सी.जी. आदि पेथालोजिकल टेस्ट सदैव एक जैसे नहीं होते। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के निदान का यहीं मूलाधार होता है। जब रोग का आधार ही बदलता रहे तो ऐसे निदान कैसे विश्वसनीय,सही, प्रभावशाली और वैज्ञानिक हो सकते हैं ?

रोग निदान में यिन-यांग सिद्धान्त का महत्व-

शारीरिक अथवा मानसिक रोगों का एक कारण यिन-यांग का असंतुलन भी होता है। यिन और यांग एक ही प्रकार की ऊर्जा से विशेष संबंधित होते हैं। जब तक शरीर में किसी अंगों के जोड़ों के दोनों अंगों में ऊर्जाएं संतुलित होती है तब तक दोनों अंग स्वस्थ रहते हैं। ये अंग पति-पत्नी की भांति एक दूसरे के पूरक होते हैं। अत: किसी एक अंग में रोग होने की अवस्था में उसके सहयोगी अंग पर उसका विशेष प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जैसे यदि कोई व्यक्ति अपने पत्नी के संक्रामक रोग के कारण तनावग्रस्त हो तो, उस व्यक्ति का तनाव तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक उसकी पत्नी रोग मुक्त नहीं होती। आज बहुत से मधुमेह के रोगियों का पेन्क्रियाज खराब नहीं होता, खराब होता है आमाशय! अत: ऐसे रोगियों के पाचन तंत्र को सुधारने से मधुमेह चंद दिनों में ही ठीक हो जाता है। इसी प्रकार बहुत से रोगियों की छोटी आंत में खराबी के कारण हृदय पर वायु का दबाब पड़ने से हृदय रोगी के रूप में और कभी-कभी बड़ी आंत के बराबर कार्य न करने के कारण उससे फेंफड़े पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण अस्थमा रोग के रूप में निदान एवं उपचार किया जाता है।

शरीर में हृदय मेरेडियन की स्थिति

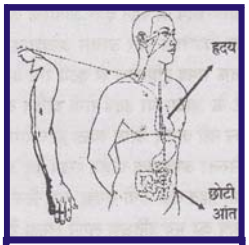

शरीर में छोटी आंत मेरेडियन की स्थिति

अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ प्राय: उसी अंग का उपचार करती हैं, जिनके प्रत्यक्ष लक्षण उनके ध्यान में आते हैं। परन्तु यदि रोग का कारण उसका पूरक अंग में हो तो बहुत प्रयास करने के बावजूद रोगों से राहत न दिला पाने के कारण उस रोग को असाध्य बतला दिया जाता है। अत: निदान करते समय हमें रोग के कारणों को यिन-यांग के आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों से समझना चाहिए तथा उनमें किसी भी विधि द्वारा पुन: सन्तुलन कर तालमेल स्थापित करने से उपचार शीघ्र एवं प्रभावशाली हो जाता है। मधुमेह के रोगियों को आमाशय, हृदय रोगियों को छोटी आंत तथा अस्थमा के रोगियों को फेंफड़ों के साथ-साथ बड़ी आंत को भी ठीक करना चाहिये, जिससे उपचार स्थायी हो सकता हैं। अत: जिन रोगों का प्राय: सही निदान नहीं हो पाता तथा दवा जीवन की आवश्यकता बन जाती है, प्राय: ऐसे रोगों में संबंधित यिन-यांग अंगों के संतुलन से चमत्कारी परिणाम शीघ्र मिल सकते हैं।

चीनी पंच तत्त्व पर आधारित निदान अधिक वैज्ञानिक-

चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार यिन-यांग अंगों के गुण धर्म अग्नि तत्त्व से मिलते-जुलते होते हैं, उन अँगों का वर्गीकरण अग्नि तत्त्व के साथ, जिनके गुणों में पृथ्वी के गुणों की समानता होती है, उनका वर्गीकरण पृथ्वी तत्त्व के साथ, जिनके गुण जल से ज्यादा मिलते हैं, उस जोड़े को जल तत्त्व के साथ तथा जिनके गुण वनस्पति के समान होते हैं, उनको वनस्पति तत्त्व के साथ तथा जिनके गुण धातु तत्त्व से मिलते है उनका वर्गीकरण धातु तत्त्व के साथ किया जाता है। उनकी मान्यता के अनुसार हृदय और छोटी आँत का सम्बन्ध अग्नि तत्त्व से, फेंफड़े और बड़ी आँत का सम्बन्ध धातु तत्त्व से, गुर्दे और मूत्राशय का जल तत्त्व से, लीवर और गालब्लेडर का लकड़ी तत्त्व से, स्पलीन/पेन्क्रियाज और आमाशय पृथ्वी तत्त्व के अंतर्गत वर्गीकृत होते हैं।

चीनी पंच तत्त्वों एवं उनकी ऊर्जाओं से विशेष प्रभावित होने वाले तथ्य

पंच तत्त्व का नाम	लकडी/वनस्पति	अग्नि		पृथ्वी	धातु	जल
संबंधित ऊर्जा	वायु	ताप	उष्णता	आद्रता/नमी	शुष्कता	ठण्डक
यिन (ठोस) अंग	यकृत/लीवर	हृदय	मस्तिष्क पेरीकार्डियन	तिल्ली	फेंफड़े	गुर्दे
यांग अंग	पित्ताशय/गालब्लेडर	छोटी आंत	मेरु दण्ड/त्रि अग्नि)	आमाशय	बड़ी आंत	मूत्राशय
प्रभावी अवस्था	बाल्यकाल	किशोरावस्था	युवावस्था	मध्यावस्था	वृद्धावस्था से पूर्व	वृद्धावस्था
संबंधित रंग	हरा	लाल	केसरिया	पीला	सफेद	नीला/काला
विशेष प्रभावित तंत्र	मज्जा तंत्र	रक्त परिभ्रमण तंत्र	ग्रन्थियां, नाड़ी तंत्र	पाचन/लासिका तंत्र	श्वसन तंत्र	अस्थि तंत्र
अवयव	मांसपेशियाँ	रक्त	चिंतन, मनन,, स्मृति, कल्पना संवेदना	चर्बी/मोटापा	त्वचा	हड्डियाँ, दांत
मौसम	बसंत	गर्मी	तेज गर्मी	वर्षा एवं बदलता मौसम	पतझड	सर्दी
स्वाद	खट्टा	कड़वा		मीठा	चटपटा	नमकीन
गन्ध	खट्टी	जलने की	—	सुगन्ध प्रिय	सड़ी हुई दुर्गन्ध	दुर्गन्ध
इन्द्रिय विषय	दृष्टि	वाणी	संवेदना, अनुभूति	स्वाद	गंध	श्रवण
शरीर से विसर्जित तरल पदार्थ	आंसू	पसीना		थूक	कफ	पेशाब
शरीर से निकलने वाली ध्वनियाँ	चिल्लाना	हंसना	निद्रा में खर्राटे भरना	गुनगुनाना, डकार	छींकना, हांफना	जोर जोर से रोना
अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ	थायमस	थायरोइड	पीयूष	पेन्क्रियाज	एड्रीनल	प्रजनन ग्रन्थियाँ

शरीर में चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक अंग का अपना-अपना परिवार होता है तथा उस तत्त्व अथवा उससे संबंधित ऊर्जा के असंतुलन से परिवार के सभी सदस्य किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं। अतः जब पंच तत्त्वों के अनुपात में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की आवश्यकतानुसार असंतुलन हो जाता है तो, रोग होने की संभावना बढ़ती हैं। हमारे शरीर में पाँच इन्द्रियाँ, मन और मस्तिष्क उस असंतुलन से अलग-अलग ढंग से प्रभावित होते हैं, जो हमारे चित्त, स्वभाव और जीवन शैली का निर्धारण करते हैं। शरीर में जब तक इन पांचों तत्त्वों का अनुपात आवश्यकता के अनुरूप संतुलित होता है, तब तक व्यक्ति अपने आपको स्वस्थ अनुभव करता है और जब उनमें असंतुलन हो जाता है तो अस्वस्थ। इन तत्त्वों का पांचों इन्द्रियों के विषयों, जैसे देखना, सुनना, स्वाद, गन्ध आदि से अलग-अलग संबंध होता है। प्रत्येक तत्त्व जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं, मौसम, वातावरण आदि से अलग-अलग ढंग से प्रभावित होते हैं। प्रत्येक तत्त्व का अलग-अलग रंगों, स्वादों, गन्धों, अन्तःश्रावी ग्रन्थियों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। शरीर के विभिन्न अंग, उपांग, अवयव, शरीर से निष्कासित होने वाले विजातीय द्रव्य, शरीर से निकलने वाली विभिन्न प्रकार की ध्वनियों, शरीर में अलग-अलग स्थान पर प्रकट होने वाले लक्षणों के एवं संकेतों के माध्यम से इन तत्त्वों का असंतुलन अभिव्यक्त होता है। निदान करते समय इन तथ्यों की उपेक्षा न करने, सारे शरीर को एक ईकाई मानने एवं अंगों के परिवार का आपसी संबंध ध्यान में रख निदान करने से निदान अधिक सही होता है। रोग का निदान करते समय प्रायः अन्य चिकित्सक उन प्रभावों को महत्त्व नहीं देते हैं। अतः समग्र दृष्टिकोण से स्थिति को समझे बिना निदान कैसे सही हो सकता है, चिन्तन का प्रश्न है ?

शरीर में प्रमुख अंगों का आपसी संबंध

अंग का नाम	मातृ अंग	पुत्र अंग	अंग जिससे नियन्त्रित होता है	अंग जिसको नियन्त्रित करता है
यकृत	गुर्दे	हृदय	फेंफड़े	तिल्ली
पित्ताशय	मूत्राशय	छोटी आंत	बड़ी आंत	आमाशय
हृदय	यकृत	तिल्ली	गुर्दे	फेंफड़े
छोटी आंत	पित्ताशय	आमाशय	मूत्राशय	बड़ी आंत
तिल्ली	हृदय	फेंफड़े	यकृत	गुर्दे
आमाशय	छोटी आंत	बड़ी आंत	पित्ताशय	मूत्राशय
फेंफड़े	तिल्ली	गुर्दे	हृदय	यकृत
बड़ी आंत	आमाशय	मूत्राशय	छोटी आंत	वित्ताशय
गुर्दे	फेंफड़े	यकृत	तिल्ली	हृदय
मूत्राशय	बड़ी आंत	पित्ताशय	आमाशय	छोटी आंत

जैसे किसी व्यक्ति का हृदय कमजोर हो तो, उसके मातृ अंग लीवर तथा पुत्र अंग तिल्ली की क्षमता बढ़ाने से हृदय बराबर कार्य करने लग सकता है। हृदय अग्नि तत्त्व से संबंधित होता है और जल तत्त्व उसे शान्त अथवा कमजोर करता है। अर्थात् जिसका हृदय कमजोर होता है, उसके गुर्दो को अधिक क्रियाशील होना पड़ता है। अतः यदि जल तत्त्व कम कर दिया जाए तो, हृदय की अग्नि ऊर्जा मंद नहीं होगी तथा हृदय बराबर कार्य करने लग जाता है।

निदान में आयु का महत्त्व-

कोई भी रोग रातों रात अपना विकराल रूप धारण नहीं करता। जिस प्रकार बीज धीरे-धीरे वृक्ष का रूप लेता है उसी प्रकार रोग भी धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाता है। शरीर में वायु, गर्मी, नमी, शुष्कता और ठण्डक का जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग अनुपात होता है। जिस अवस्था का रोग होता है, रोग के कारणों में उस अवस्था से संबंधित ऊर्जा की प्रभावी भूमिका होती है। जैसे बच्चा चंचल न हों, युवाओं में जोश न हों, तो असंतुलन के कारण माने जाते हैं। अतः एक ही प्रकार के लक्षणों से परिभाषित रोगों के कारण अलग-अलग होते हैं। उनका अलग-अलग अंगों की मुख्य अथवा सहायक ऊर्जा से भी अलग-अलग संबंध होता है। अतः सही निदान करते समय व्यक्ति की आयु के प्रभाव का भी महत्त्व होता है।

मौसम का प्रभाव-

अलग-अलग जलवायु में अलग-अलग ऊर्जाएँ प्रभावशाली होती है। अतः रोग का निदान करते समय उस जलवायु से संबंधित प्रमुख अंग में ऊर्जा असंतुलन की रोग के कारणों में मुख्य भूमिका होती है। एक जैसे बाह्य लक्षण वाले रोगों में बसन्त

ऋतु में, यकृत-पित्ताशय, गर्मी में हृदय-छोटी आंत, वर्षा अथवा बदलते मौसम में तिल्ली-आमाशय, सर्दी की मौसम में, गुर्दे-मूत्राशय आदि में असंतुलन रोग का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण हो सकता है।

शारीरिक ध्वनियाँ और रोग-

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से अलग-अलग प्रकार की आवाजें निकलती हैं। जैसे कोई निद्रा में खर्राटें लेता है तो किसी को डकारें, जम्भाईयाँ, हिचकियाँ, छीकें, खांसी आती है। किसी की आवाज बदल जाती है तो, किसी के आवाज के साथ गैस विसर्जित होती है। किसी की आवाज मधुर सुरीली होती है तो, किसी की कर्कश और मोटी क्यों? शरीर में इन ध्वनियों के स्पन्दन का नियन्त्रण कौन और कैसे करता है? क्या इन ध्वनियों का हमारे स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या इन ध्वनियों को मन चाहें घटाना, बढ़ाना संभव होता है? क्या निदान में इनकी समीक्षा होती है?

रंग और रोग-

कोई काला तो कोई गोरा या अन्य रंग वाला क्यों? कभी-कभी शरीर के कुछ भाग काले, नीले या लाल क्यों हो जाते हैं? कभी-कभी त्वचा का रंग क्यों उड़ जाता है? क्या आधुनिक परीक्षणों में इस परिवर्तन के कारणों का निदान संभव होता है? क्या इन परिवर्तनों का रोग से कोई संबंध होता है? इन रंगों के परिवर्तन में कौन से अंग की प्रभावी भूमिका होती है? इसके अतिरिक्त किसी को लाल तो किसी को पीला, हरा, नीला आदि रंग अच्छे या बुरे क्यों लगते हैं? क्या रंगों की पसन्द या नापसन्द का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या निदान करते समय इस तथ्य की उपेक्षा तो नहीं होती?

स्वाद और रोग-

किसी व्यक्ति को खट्टा तो किसी को मीठा, किसी को नमकीन तो किसी को चटपटा, क्यों अच्छा लगता है? क्या इन स्वादों की पसन्द या अरुचि का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? मधुमेह वालों को मिठाई और रक्तचाप के रोगियों को नमक छोड़ने की क्यों सलाह दी जाती है? शरीर में उन स्वादों का नियन्त्रण कौन करता है? क्या अपनी इच्छानुसार जब चाहें स्वादों के प्रति लगाव बदला जा सकता है? क्या स्वादों की रूचि का रोग से संबध होता है?

गंध और रोग-

चन्द व्यक्ति अत्यधिक सुगन्ध प्रिय होते हैं। चन्द तनिक भी दुर्गन्ध सहन नहीं कर सकते। कुछ व्यक्तियों को दूर में कुछ जल रहा हो, सहज आभास हो जाता है, तो कुछ लोगों को समीप में जलने का भी आभास नहीं होता। किसी के शरीर से एक प्रकार की गंध आती है और अन्य के शरीर में दूसरे प्रकार की। ऐसा क्यों? क्या शरीर से निकलने वाली तथा बाहिर से आने वाली गन्धों के प्रति रूचि अथवा अरूचि के भाव का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या गन्ध का नियन्त्रण एक मात्र नाक से संबंधित होता है? क्या गन्ध के प्रति हमारी प्रकृति को दवा द्वारा मन चाहा बदलना संभव है? क्या गंध निदान को प्रभावित करती है?

शरीर से विसर्जित होने वाले तरल पदार्थों की रोग निदान में भूमिका-

किसी व्यक्ति को बैठे-बैठे ही पसीना आता है तो अन्य को कठिन परिश्रम अथवा दौड़ने के बावजूद भी नहीं आता। ऐसा क्यों? किसी की आंखों में बिना कारण आंसू आ जाते हैं। किसी के थूक, कफ अथवा पसीना ज्यादा आता है, तो वैसे ही लक्षणों वाले अन्य रोगी को कभी-कभी कम भी पसीना आता है? क्या हम जैसा चाहें, जिस मार्ग से चाहें, तरल विजातीय पदार्थो का विसर्जन अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं? क्या विजातीय तरल विभिन्न द्रवों के विसर्जन तरीकों का आपसी संबंध होता है? क्या पेथालोजीकल अथवा अन्य परीक्षणों द्वारा उनके कारणों का पूर्ण निदान संभव होता है?

निदान में अंगों में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा प्रवाह के क्रम की भूमिका

शरीर में स्थित विभिन्न अंगों की मेरेडियनों में ऊर्जा के प्रवाह का एक निश्चित क्रम होता है। प्रत्येक मेरेडियन में प्रवाह किसी अन्य मेरेडियन से आता हैं और किसी दूसरी मेरेडियन में आगे जाता हैं। अतः रोग की अवस्था में संबंधित अंग में ऊर्जा प्रवाह को संतुलित करते समय उसके आगे और बाद में आने वाले अंगों पर पड़ने वाले रोग के लक्षणों की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये ताकि निदान सही हो सके। जैसे फेंफड़े मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह तिल्ली मेरेडियन से आता है और आगे बड़ी आंत मेरेडियन में जाता हैं। अतः दमा अथवा फेंफड़ों से संबंधित अन्य रोगों में तीनों मेरेडियनों में ऊर्जा प्रवाह नियमित और संतुलित करने से प्रभावशाली स्थायी परिणाम आते हैं।

त्रिन त्रियोल मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह

यांग त्रियोल मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह

एलर्जी अस्थमा का मुख्य कारण प्राय: तिल्ली मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह का असंतुलन होता है। अन्य प्रकार के पुराने दमा का कारण प्राय: बड़ी आंत मेरेडियन में ऊर्जा प्रवाह का असंतुलन भी हो सकता है।

हृदय मेरेडियन में ऊर्जा गुर्दे मेरेडियन से आती हैं और छोटी आंत मेरेडियन में जाती है। अत: तीनों एक दूसरे से संबंधित होते हैं। इसी प्रकार पेरीकार्डियन मेरेडियन में ऊर्जा लीवर मेरेडियन से आती है और ट्रीपल वार्मर मेरेडियन में जाती हैं। स्पलीन मेरेडियन में ऊर्जा पित्ताशय मेरेडियन से आती हैं और फेंफड़े में जाती हैं। इसी कारण प्राणायाम और पाचन तंत्र के संतुलन से मधुमेह जो स्पलीन से विशेष संबंधित होता है, नियन्त्रित किया जा सकता हैं। गुर्दे मेरेडियन में प्रवाह मूत्राशय से आता हैं और हृदय में जाता हैं। लीवर मेरेडियन में प्रवाह आमाशय से आता है और पेरीकार्डियन मेरेडियन में जाता हैं। अत: पुराने रक्तचाप और हृदय रोग का कारण गुर्दे मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह का असंतुलन भी हो सकता है।

निदान में रोग के अधिकतम प्रभावी समय की भूमिका–

निदान करते समय रोग के तीव्रतम प्रभाव वाले समय का भी बहुत अधिक महत्त्व होता है। जब रोग तीव्र अवस्था में होता है उस समय कौनसी मेरेडियन में ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होता है और कौनसी मेरेडियन में न्यूनतम। यदि रोग का कारण अंग की निष्क्रियता हों तो जब उस मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है, रोगी अधिक परेशान होता हैं। परन्तु जब रोग का कारण अंग की अत्यधिक सक्रियता से होता है तो, जब उससे संबंधित मेरेडियन में ऊर्जा का अधिकतम प्रवाह होता है तब रोगी को अधिक बैचेनी होती है।

शरीर के प्रमुख अंगों में प्रकृति से सर्वाधिक व निम्नतम ऊर्जा के प्रवाह का समय

अंगों का नाम	अंग में प्राण ऊर्जा के सर्वाधिक प्रवाह का समय	प्राण ऊर्जा के निम्नतम प्रवाह का समय
1. फेंफड़ें (LU)	प्रात: 3 से 5 बजे तक	दोपहर 3 बजे से 5 बजे तक
2. बड़ी आंत (LI)	प्रात: 5 से 7 बजे तक	सांयकाल 5 बजे से 7 बजे तक
3. आमाशय (ST)	प्रात: 7 से 9 बजे तक	सांयकाल 7 बजे से 9 बजे तक
4. तिल्ली(SP)/पेनक्रियाज	प्रात: 9 से 11 बजे तक	रात्रि 9 बजे से 11 बजे तक
5. हृदय (H)	प्रात: 11 से 1 बजे तक	रात्रि 11 से 1 बजे तक
6. छोटी आंत (SI)	दोपहर 1 से 3 बजे तक	रात्रि 1 से 3 बजे तक
7. मूत्राशय (UB)	दोपहर 3 से 5 बजे तक	रात्रि 3 से 5 बजे तक
8. गुर्दे (K)	सांयकाल 5 से 7 बजे तक	प्रात: 5 से 7 बजे तक
9. पेरीकार्डियन (PC)	रात्रि 7 से 9 बजे तक	प्रात: 7 से 9 बजे तक
10. त्रिअग्री (TW)	रात्रि 9 से 11 बजे तक	दिन में 9 से 11 बजे तक
11. पीन्ताशय (GB)	रात्रि 11 से 1 बजे तक	दोपहर 11 से 1 बजे तक
12. लीवर (LIV)	रात्रि 1 से 3 बजे तक	दोपहर 1 से 3 बजे तक

शरीर में चौबीसों घंटे सभी मेरेडियनों में ऊर्जा प्रवाह की एक जैसी स्थिति नहीं रहती। अत: दिन अथवा रात में जब किसी अंग में ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक अथवा न्यूनतम होता है उस क्रम में आगे और पीछे आने वाले अंगों पर भी परोक्ष रूप से रोग का प्रभाव पडता है। जैसे फेंफड़े में सर्वाधिक ऊर्जा का समय प्रात: 3 बजे से 5 बजे तक का लगभग होता है। फेंफड़े से पूर्व लीवर में रात्रि एक बजे से तीन बजे ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह और बड़ी आंत में प्रात: 5 बजे से 7 बजे के मध्य होता है। अत: फेंफड़े संबंधित रोग का यकृत और बड़ी आंत के कार्यो पर भी प्रभाव पड़ सकता हैं। दूसरी बात जब फेंफड़ों में निम्नतम ऊर्जा का प्रवाह दोपहर 3 बजे से 5 बजे के लगभग होता है, उसी समय गुर्दे में अधिकतम ऊर्जा का प्रवाह होने से रोग की स्थिति में फेंफड़े और गुर्दो में असंतुलन भी बिगड़ सकता है। कहने का तात्पर्य यही है कि निदान करते समय चिकित्सक का दृष्टिकोण जितना व्यापक और समग्र होगा उतना ही निदान सही होता है।

विश्वसनीय निदान की सरलतम पद्धति एक्युप्रेशर

एक्युप्रेशर निदान, उपचार एवं रोगों के रोकथाम की बहुत सरल, सस्ती, स्वावलंबी, प्रभावशाली, अहिंसक वैज्ञानिक पद्धति है। शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग का संबंध पूरे शरीर से होता है। इसी कारण जब शरीर के किसी भाग में तीव्र पीड़ा होती है अथवा कष्ट होता है तो, हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। शरीर में प्रत्येक अंग, उपांग, अवयव, अन्त:श्रावी ग्रंथियों आदि से

संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन बिन्दु हमारी हथेली और पगथली में होते हैं। जिस प्रकार किसी भवन की बिजली का सारा नियन्त्रण मुख्य स्विच बोर्ड से होता है। ठीक उसी प्रकार ये प्रतिवेदन बिन्दु शरीर के प्रत्येक भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी का पिता, किसी का भाई, किसी का पति तो अन्य किसी का दादा, नाना, पुत्र, चाचा, मामा, मित्र आदि भी हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति का फोटों अलग-अलग स्थानों से लिया जायें तो एक ही व्यक्ति के फोटों में अन्तर हो सकता है। ठीक उसी प्रकार से प्रतिवेदन बिन्दु भी शरीर के अलग-अलग भागों से संबंधित हो सकते हैं। यानी एक ही प्रतिवेदन बिन्दु के शरीर में अनेक संबंध हो सकते हैं।

सुजोक और रिफ्लेक्सोलॉजी एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार हथेली और पगथली में दबाव देने पर जिन स्थानों पर दर्द होता है, उसका मतलब उन स्थानों पर विकार अथवा अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का जमाव हो जाना होता है। परिणाम स्वरूप शरीर में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध हो जाता है। ये प्रतिवेदन बिन्दु बिजली के पंखों, बल्ब या अन्य उपकरणों के स्विच की भांति शरीर के अलग-अलग भागों से संबंधित होते हैं। जिस प्रकार स्विच में खराबी होने से उपकरण तक बिजली का प्रवाह सही ढंग से नहीं पहुँचता, ठीक उसी प्रकार इन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर विजातीय तत्त्वों के जमा होने से संबंधित अंग, उपांग, अवयवों आदि में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में असंतुलन हो जाने से व्यक्ति रोगी बनने लगता है।

एक्युप्रेशर द्वारा रोग निदान का सिद्धान्त-

हथेली और पगथली में आगे पीछे सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में अर्थात पूरी हथेली और पगथली के पूरे क्षेत्रफल में अंगुलियों या अंगूठे से हम सहनीय गहरा दबाव देवें और जहाँ-जहाँ जैसा-जैसा दर्द आता है, वे सारे दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु मिलकर शरीर में रोग के परिवार की स्थिति, एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार बनाते हैं।

एक्युप्रेशर द्वारा निदान क्यों विश्वसनीय?

1. जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं उतना ही रोग पुराना अथवा संक्रामक और भयंकर होता है। हथेली और पगथली में सारे शरीर के प्रत्येक भाग के प्रतिवेदन बिन्दु होने से पूरे शरीर में रोग का निदान हो जाता है। जबकि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में रोगग्रस्त भाग की तरफ ही निदान में विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. दूसरी बात प्रत्येक व्यक्ति की हथेली और पगथली उसके स्वयं की होती है। अत: इस विधि द्वारा उस व्यक्ति का स्वयं से संबंधित सभी रोगों का निदान होता है। जबकि लक्षणों पर आधारित निदान पूरा नहीं हो सकता। सैंकड़ों हृदय रोगियों, मधुमेह के रोगियों अथवा और किसी नाम से पहचाने जाने वाले रोगियों के रोग का परिवार एक सा नहीं हो सकता। अत: निदान करते समय सहयोगी रोगों की उपेक्षा होना स्वाभाविक है। परन्तु एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा जितना सही और विश्वसनीय निदान होता है, अन्यत्र प्राय: संभव नहीं होता।
3. कभी-कभी रोग के कारण कुछ और होते हैं और उसके लक्षण कहीं दूसरे अंगों पर प्रकट होते हैं। जैसे मधुमेह का कारण पाचन तंत्र का बिगड़ना भी हो सकता है, न कि पेन्क्रियाज का खराब होना। हृदय शूल का कारण छोटी आंत में बनी गैस का प्रभाव भी हो सकता है, न कि हृदय की कमजोरी का होना। अस्थमा का कारण बड़ी आंत का बराबर कार्य न करना, न कि फेफड़ों का खराब होना। जब निदान ही गलत होता है तो उपचार कैसे प्रभावशाली हो सकता है? आधुनिक चिकित्सक ऐसे रोगों को प्राय: असाध्य बतला देते हैं। परन्तु हथेली और पगथली के समस्त प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से जहाँ ज्यादा दर्द आता है, वे ही रोग का मुख्य कारण होते हैं, भले ही रोग के लक्षण कहीं अन्य प्रकट क्यों न हों? इसी कारण एक्युप्रेशर असाध्य रोगों के निदान की प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति होती है।
4. रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही इस विधि द्वारा निदान संभव होता है। जहाँ-जहाँ पर दबाव देने से दर्द आता है, वे सभी प्रतिवेदन बिन्दु शरीर में रोग की स्थिति बनाते हैं। यदि रोग के लक्षण प्रकट हो गये हों तो वे उसके कारण होते हैं, परन्तु यदि रोग के लक्षण प्रकट न हुयें हों तो, भविष्य में होने वाले रोगों का कारण उन्हीं प्रतिवेदन बिन्दुओं में से होता है। रोग आने से पूर्व उसकी प्रारम्भिक अवस्था का निदान जितना सरल इस पद्धति द्वारा होता है, उतना अन्यत्र कठिन होता है।
5. शरीर में रोग कभी अकेला आ ही नहीं सकता। जिन लक्षणों के आधार पर आज रोगों का नामा:करण किया जाता है, वे वास्तव में रोगों के नेता होते हैं, जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का समर्थन और सहयोग प्राप्त होता है। परन्तु इस विधि द्वारा रोगों के पूरे परिवार का निदान होने से निदान सही और विश्वसनीय होता हैं, जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्राय: संभव नहीं होता।

6. हथेली और पगथली में दबाव देने पर जितने कम प्रतिवेदन बिन्दुओं पर और जितना कम दर्द आता है, उतना ही व्यक्ति स्वस्थ होता है। जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु उतना पुराना रोग और स्वास्थ्य खराब होता है। इस प्रकार इस निदान पद्धति द्वारा जो रोग आधुनिक पेथालोजिकल टेस्टों अथवा यंत्रों की पकड़ में नहीं आते, उन रोगों के कारणों का सरलता पूर्वक निदान किया जा सकता है। उपर्युक्त निदान अधिक सही और विश्वसनीय होता है। अतः उस निदान पर आधारित उपचार-प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित और अल्पकालीन होता है, जिस पर किसी को भी आंशका नहीं होनी चाहियें।

निदान बिल्कुल सरल, सस्ता, सहज, पूर्ण अहिंसक, स्वावलम्बी, सर्वत्र अपने साथ उपलब्ध होता है। शरीर विज्ञान के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होने से सभी व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ उपचार कर सकते हैं। पूरे शरीर का निदान होने से शरीर के साथ-साथ, मन और वाणी के विकारों का भी, निदान करने वाला एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सरलतम निदान होता है।

चिकित्सा हेतु व्यापक दृष्टिकोण आवश्यक-

आज जो निदान के भौतिक साधन उपलब्ध हैं, वे व्यक्ति की मानसिकताओं, भावनाओं, कल्पनाओं, संवेदनाओं, आवेगों का विश्लेषण नहीं कर सकते। भय, दुःख, चिन्ता, तनाव, निराशा, अधीरता, पाश्विक वृत्तियाँ, गलत सोच, क्रोध, छल, कपट, तृष्णा, अहं, असन्तोष से होने वाले रासायनिक परिवर्तनों को नहीं बता सकते। भौतिक उपकरण और परीक्षण के तौर-तरीकों से रोगों से पड़ने वाले प्रत्यक्ष भौतिक परिवर्तनों का ही पता लगाया जा सकता है, उनके मूल कारणों तक नहीं पहुँचा जा सकता है। उसके आधार पर किया गया उपचार तो मात्र शरीर में होने वाले भौतिक परिवर्तनों तक ही सीमित होता है। शरीर की पीड़ाओं अथवा निष्क्रियताओं से हम घबरा जाते हैं, उन्हीं को रोग मानते हैं। चेतना का अस्तित्व एवं विकास प्रायः उनके कार्यक्षेत्र में नहीं होता है।

आज अधिकांश लोगों की ऐसी प्रवृत्ति बन गई है कि वे वैज्ञानिक तथ्यों को ही सुनना, समझना और ग्रहण करना पसंद करते हैं, भले ही विज्ञान के मौलिक मापदण्डों से अपरिचित ही क्यों न हों? वास्तव में आज स्वास्थ्य विज्ञान, विज्ञापन से ज्यादा प्रभावित हो रहा है, इसी कारण सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा विज्ञान की आड़ में हो रही है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के दुष्प्रभावों को समझे बिना न तो उसके प्रति हमारा मोह भंग होगा और न अन्य प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों को जानने, समझने और अपनाने के प्रति जनसाधारण आकर्षित ही होगा। यदि बुराई को गलत मानने वाले बुराई को छोड़ दें, तब ही चिकित्सा में स्वालम्बन, अहिंसा, प्रभावशालीता और स्थायित्व का महत्व समझा जा सकता है। प्रत्येक चमकती वस्तु सोना नहीं होती। आधुनिक चिकित्सा का निदान चन्द अपवादों को छोड़कर सदैव सही एवं विश्वसनीय ही हों और उपचार भी सभी रोगों में लाभकारी और प्रभावशाली ही हो, यह आवश्यक नहीं। विज्ञापन और शीघ्रता के इस युग में जिस मानसिकता में हम जी रहे हैं, जो चिकित्सा न सहज है, न सरल है, न सस्ती है, न स्वावलम्बी है, न अहिंसक है, न पूर्ण है, न दुष्प्रभावों से रहित है, न स्थायी है, न जिसमें सारे शरीर को एक ईकाई मानकर निदान किया जाता है, फिर भी आधुनिक चिकित्सा को विकसित, वैज्ञानिक,प्रभावशाली मानना कितनी बुद्धिमता है? स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये यह चिन्तन का प्रश्न है?